एक बौराई बर्बर व्यवस्था

पुलिस अधिकारी किरन बेदी ठीक ही मानती हैं कि बावर्दी पुलिसकर्मी राज्य का सबसे दृष्टिगोचर सक्रिय अंग है। अत: किसी विधि संचालित समाज में पुलिस ही राज्य व्यवस्था के चरित्र को सबसे लाक्षणिक रूप से प्रस्तुत करती है। अगर पुलिस प्रणाली जन-उत्पीड़क है तब राज्य जन-उत्पीड़क है, अगर पुलिस जन-सेवक है तब राज्य व्यवस्था जन-सेवक है। इस तर्क में अगर पुलिस और राज्य को आपस में अदल-बदल दें तब भी निष्कर्ष वही रहते हैं।

आइये हम इस कसौटी पर भारतीय पुलिस के रंग-ढंग और तौर-तरीकों की पड़ताल करते हुए मौजूदा विधि व्यवस्था के चरित्र का आकलन करने का प्रयास करें। अभी कुछ वर्षों पहले पंजाब पुलिस के एक पुलिस अधीक्षक ने उन्हीं कानूनी कार्रवाइयों से डर कर आत्महत्या कर ली थी जिनकी आड़ में तथा जिसकी रक्षा के लिए उन्होंने हजारों लोगों को फर्जी मुठभेड़ों में या यातनाएं देकर मौत के घाट उतार दिया था। इन्हीं अवतार सिंह संधू की आत्महत्या पर पुलिस प्रणाली के 'नायक' कंवरपालसिंह गिल ने शेर उच्चारा–"इस नामर्द देश में पैदा मुझे क्यूं कर किया।"

आज उत्तर प्रदेश पुलिस भी कानून की रक्षा के लिए कानूनी प्रावधानों को अपने बूट के नीचे दबाये हुए है। नवम्बर 1999 में मुजफ्फरनगर से अगवा कर लिये गये व्यापारी महेन्द्र प्रकाश मित्तल की रिहाई के लिए पुलिस ने संदिग्ध अपहर्ता के पुत्र का देहरादून के छात्रावास से अपहरण कर लिया था जिसका अपराध से कोई नाता नहीं था। पुलिस के इस कारनामे की दैनिक जागरण के लखनऊ संस्करण (23-11-99) ने भोंड़ी भड़ैती के साथ सराहना भी की थी। किन्तु पुलिस का जबरिया जन सहयोग का यह रवैया कई बार काफी दूर तक चला जाता है। मेरठ की छात्रा स्मिता भादुड़ी अपने एक मित्र के साथ एक छोटी यात्रा पर निकली थी। किन्तु पुलिस के जांबाज पहरुओं के प्रबल सहयोग से यह अन्तिम यात्रा बन गई। यह मृत्यु एक उल्लेखनीय घटना हो चुकी है किन्तु कई जगह ऐसी 'जनसेवाओं' का कोई उल्लेख नहीं होता है।

अब तक भारतीय पुलिस अपनी अमानवीय संवेदनशून्यता, अपराधों पर अपने नगण्य नियंत्रण और हिरासत में होने वाली मौतों के लिए ही कुख्यात थी। इधर उसकी उपलब्धियों में नकली मुठभेड़ों का एक तुर्रा और जुड़ा था। किन्तु यह नाकारापन समस्त सीमाएं पार करते हुए आपराधिक दुरभिसन्धि में बदल गया है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में एक शीर्ष पुलिस अधिकारी के बेटे से डरी हुई एक लड़की प्रियदर्शनी मट्टू ने पुलिस सहायता की मांग की थी। अत: प्रियदर्शनी को व्यक्तिगत सुरक्षा हेतु पुलिस गारद दी गई। किन्तु अन्तत: प्रियदर्शनी को पुलिस सुरक्षा के बीच ही 23.1.96 को बलात्कार और हत्या का शिकार होना पड़ा। अपराधी था पुलिस के एक ऊंचे अफसर का बेटा। अदालत ने अपने फैसले में कहा कि वह समझती है कि बलात्कार और हत्या अभियुक्त ने की है पर चूंकि पुलिस और सीबीआई ने तफ्तीश ठीक से नहीं की है इसलिए सबूतों के अभाव में उसे छोड़ा जा रहा है।

किन्तु अब हाशिये पर ठेल दिये गये लोग–गरीब और गंवार लोग–साम्राज्यवादी संस्कृति में पगी पुलिस के प्रति अपनी उकताहट को जाहिर करने लगे हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक स्टेशन–औड़िहार में पूर्व प्रधानमंत्री के सरकारी तामझाम से खुन्नस खाये छात्रों ने विशिष्ट सुरक्षा व्यवस्था की बखिया उधेड़ते हुए उन्हें छिपने पर मजबूर कर दिया। यही नहीं इस आर्थिक रूप से पिछड़े अंचल के सांस्कृतिक और शैक्षणिक रूप से प्राय: पिछड़ जाने वाले छात्रों के आक्रोश की आंच को समूची व्यवस्था ने महसूस किया। बलिया में एक दरोगा ने एक छात्र को 'दुर्घटनावश' मार डाला। इस पर उद्वेलित जनता ने समूचे बलिया जिले को दो-तीन दिनों तक पुलिस से छीन अपने कब्जे में ले लिया था। न केवल सम्बन्धित थाना बल्कि आसपास के कई पुलिस दफ्तर आग के हवाले हो गये। जन-आक्रोश की लपटों ने अन्य सरकारी सम्पत्ति को भी अपनी चपेट में लिया। इस पुलिस उत्पीड़न तथा इसकी स्वयं स्फूर्त तात्कालिक प्रतिक्रिया के बाद सब कुछ सामान्य तो हो गया किन्तु एक प्रश्न अनुत्तरित रह गया—"आखिर पुलिस के रूप में हमारे बीच के लोग ऐसी हैवानी हरकतें क्यों करते हैं?"

दरअसल पुलिस के कार्य-कलाप चाहे वे विधि संगत हों या गैरकानूनी हों—वे समाज के सत्ताधारी वर्गों की इच्छा की सामूहिक अभिव्यक्ति होते हैं। अत: आमतौर पर पुलिस का प्रयोग समाज की सामूहिक स्वीकृति—कानून द्वारा संचालित होने के बजाय सत्ताधारी वर्गों की इच्छानुसार समाज को संचालित करने का प्रयास होता है। अत: जब तक समाज और सत्ता की इच्छाओं में समानता होती है, तब तक पुलिस का कार्य सुगम होता है। किन्तु मौजूदा दौर में जब समाज और सत्ता के अन्तरविरोधों के साथ-साथ खुद सत्ताधारी वर्गों के अन्तरविरोध भी दिनोदिन तीखे होते जा रहे हैं उस समय पुलिस बल अत्यन्त तीव्र सामाजिक बलाघातों का शिकार हो रहे हैं। पूंजीवादी लोकशाही में जन-समर्थन जुटाने तथा बाजार साम्राज्यवाद में थैलीशाहों के लिए सुविधा जुटाने में निहित अन्तर्विरोधों का तनाव भी पुलिस बलों को झेलना पड़ता है।

ये सभी निरन्तर बलाघात न केवल पुलिस तंत्र को विवेकहीन कर दे रहे हैं बल्कि नाना शक्ति-संतुलनों की वजह से अकर्मण्य बने पुलिस वालों में जबर्दस्त व्यक्तित्व के विघटन को और बढ़ावा दे रहे हैं। वस्तुत: यह व्यक्ति विरोधी व्यवस्था है जो पुलिस को कुन्द जेहन आत्मकेन्द्रित यंत्र-पशुओं में बदल रही है जो कि अपने आकाओं की प्रशंसा पाने की लालसा में जघन्यतम कारनामों को अंजाम दे सकते हैं।

• मुक्तिबोध मंच, पन्तनगर

'पोटा' कानून...

विरोध में दायर जनहित याचिकाएं महज ठण्डे बस्ते की चीज बन चुकी हैं। इस बुर्जुआ व्यवस्था में जो जनतंत्र बचा था आज वह भी समाप्ति की ओर है।

यह भी एक विडम्बना है कि दुनिया के जिन देशों में सैनिक जुन्टाएं कायम थीं वहां भी अब तथाकथित जनतांत्रिक सत्ताएं लाई जा रही हैं। आज मार्कोस, दुबालियर, बतिस्ता, पिनोशे जैसे तानाशाहों की जगह तथाकथित चुनी हुई सरकारें काम कर रही हैं पर वहां जनवादी अधिकारों का उतना ही हनन हो रहा है। 'जनतंत्र' का नकाब ओढ़े विश्व साम्राज्यवाद के लिए पूंजीवादी जनवाद और फासिस्ट तानाशाही की विभाजक रेखा मिटती जा रही है, जनवाद की चौहद्दी सिमटती जा रही है, पूंजीवादी संसदीय जनवाद का स्वेच्छाचारी चरित्र ज्यादा साफ होता जा रहा है।

आज शासक वर्गों ने अपना रास्ता तय कर लिया है। अब भगतसिंह के वारिसों को भी अपना रास्ता चुन लेना होगा। मेक्सिको, कोरिया, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, ईरान के छात्र-नौजवान अपने-अपने देश के निरंकुश सर्वसत्तावादी शासकों की खतरनाक नीतियों के खिलाफ सड़कों पर उतर रहे हैं। भारत के छात्रों-नौजवानों को भी इन जनविरोधी नीतियों के खिलाफ निर्णायक संघर्ष में उतरना ही पड़ेगा। •